Cosmos Multidisciplinary Research E-Journal
Online Available at www.cmrj.in
Recognized International Peer Reviewed Journal
Impact Factor 5.69
ISSN No. 2456-1665

अनुज लुगुन के 'अघोषित उलगुलान' और भुजंग मेश्राम के 'उलगुलान' काव्य संग्रह का तुलनात्मक अध्ययन

प्रा.डॉ . नवनाथ गोरक्षनाथ भोंदे
पेमराज सारडा महाविद्यालय, अ.नगर

'उलगुलान' शब्द का अर्थ संथाली भाषा में 'विद्रोह' या 'क्रांति' से लिया जाता है। यह शब्द विशेष रूप से बिरसा मुंडा के नेतृत्व में 1899-1900 ई. के दौरान हुए आदिवासी विद्रोह के लिए प्रसिद्ध है, जिसे 'मुंडा उलगुलान' कहा जाता है। यह विद्रोह अंग्रेजी शासन और ज़मींदारी व्यवस्था के खिलाफ एक महत्वपूर्ण संघर्ष था। अनुज लुगुन और भुजंग मेश्राम की कविताएँ इसी 'उलगुलान' की परंपरा को समकालीन संदर्भों में प्रस्तुत करती हैं। अनुज लुगुन का 'अघोषित उलगुलान' आदिवासी समाज के मौन लेकिन सतत संघर्ष को स्वर देता है, जबकि भुजंग मेश्राम का 'उलगुलान' आदिवासी अस्तित्व, आत्मचिंतन और सामाजिक न्याय के सवालों पर केंद्रित है।

अनुज लुगुन की कविताओं में ऐतिहासिक उलगुलान केवल एक घटना नहीं, बल्कि सतत संघर्ष के रूप में प्रकट होता है। उनके लिए यह एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है जो औपनिवेशिक और पूंजीवादी शोषण के विरुद्ध आज भी जारी है। उनकी कविता 'अघोषित उलगुलान' इसी सत्य को दर्शाती है। वे लिखते हैं कि

"लड़ रहे हैं ये नक़्शे में घटते अपने घनत्व के ख़िलाफ़
जनगणना में घटती संख्या के ख़िलाफ़
गुफाओं की तरह टूटती अपनी ही जिजीविषा के ख़िलाफ़"[1]

वही भुजंग मेश्राम की कविताओं में ऐतिहासिक विद्रोह को सांस्कृतिक और आत्मचिंतन के रूप में अधिक देखा गया है। वे आदिवासी इतिहास की उस विरासत को उभारते हैं, जो आज भी उनके समाज के अस्तित्व का आधार बनी हुई है।

"रानाच्या काठाशी या बनाच्या सळसळीचा गुंजारव ऐकताना
आता हे रानशेत तुला कळले आहे..."[2]

अनुज लुगुन के लिए आदिवासी संघर्ष केवल अस्तित्व की रक्षा नहीं, बल्कि अपने सांस्कृतिक अधिकारों की पुनः प्राप्ति का एक संघर्ष भी है। वे इस संघर्ष को 'अघोषित उलगुलान' कहते हैं क्योंकि यह विद्रोह सत्ता द्वारा मान्यता प्राप्त नहीं है, लेकिन फिर भी निरंतर जारी है। उनके लिए यह विद्रोह न केवल आर्थिक है बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषाई शोषण के खिलाफ भी है।

"शिकारी शिकार बने फिर रहे हैं शहर में
अघोषित उलगुलान में
लड़ रहे हैं जंगल"[3]

भुजंग मेश्राम के लिए यह विद्रोह केवल बाहरी सत्ता के विरुद्ध नहीं, बल्कि आत्मबोध की एक यात्रा भी है। वे इसे एक आध्यात्मिक और दार्शनिक संघर्ष के रूप में देखते हैं, जिसमें आदिवासी व्यक्ति अपनी सांस्कृतिक विरासत को पहचानने और उसे पुनः स्थापित करने का प्रयास करता है।

"आज गोरे नाहीत, ती स्वप्नांतली राज्ये नाहीत,
आमच्या दाट डोक्यांगत अरण्ये नाहीत,
तू नाहीस, आहे फक्त अरण्यात वाढणारा असंतोष
अन् ओठावर तूच दिलेलं छोटं गीत
ऊलगुलान ! ऊलगुलान ! ऊलगुलान" [4]

अनुज लुगुन की कविताओं में जल, जंगल और जमीन केवल संसाधन नहीं, बल्कि जीवन के आधार स्तंभ हैं। वे दिखाते हैं कि किस प्रकार आधुनिक पूंजीवादी व्यवस्था और औद्योगीकरण ने इन मूलभूत संसाधनों पर कब्ज़ा कर लिया है। उनकी कविताएँ दर्शाती हैं कि किस प्रकार जंगलों की कटाई, नदियों के सूखने और जबरन भूमि अधिग्रहण ने आदिवासी समाज को उनकी जड़ों से उखाड़ दिया है।

"कोई नहीं बोलता इनके हालात पर
कोई नहीं बोलता जंगलों के कटने पर"[5]

तो भुजंग मेश्राम की कविताओं में जल, जंगल और जमीन केवल भौतिक संपत्तियाँ नहीं, बल्कि एक दार्शनिक और सांस्कृतिक अवधारणा भी हैं। वे इन्हें आदिवासी समुदाय की पहचान, परंपरा और जीवनशैली से जोड़ते हैं। उनकी कविताएँ इस बात पर ज़ोर देती हैं कि इन संसाधनों के विनाश के साथ-साथ आदिवासी समाज की सांस्कृतिक विरासत भी मिटती जा रही है।

"झाडे म्हणजे उत्क्रांतीमधील अपभ्रंश बोली
जी वाहते वर्तमानाकडे, इतिहासातून"[6]

आदिवासी स्त्री की बात करें तो अनुज लुगुन की कविताओं में आदिवासी स्त्री का संघर्ष केवल पुरुषसत्ता से नहीं, बल्कि बाहरी शोषणकारी शक्तियों से भी है। वे आदिवासी स्त्री को क्रांतिकारी चेतना का वाहक मानते हैं। उनकी कविताएँ स्त्रियों के जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती हैं—चाहे वह शोषण हो, पारंपरिक भूमिका हो या प्रतिरोध की भावना।

"उन्होंने अपने जूड़ों में खोंस रखा है साहस का फूल
कानों में उम्मीद को बालियों की तरह पिरोया है

धरती को सिर पर घड़े की तरह लिये
लचकते हुए जा रही हैं उलगुलान की औरतें
धरती से प्यार करने वालों के लिए उतनी ही खूबसूरत
और उतनी ही ख़तरनाक धरती के दुश्मनों के लिए।"[7]

तो दूसरी ओर भुजंग मेश्राम की कविताओं में स्त्री केवल संघर्ष का प्रतीक नहीं, बल्कि संपूर्ण समुदाय की सांस्कृतिक धारा को आगे बढ़ाने वाली शक्ति भी है। वे आदिवासी स्त्री को मातृभूमि, प्रकृति और सृजनशीलता से जोड़कर देखते हैं। उनकी कविताओं में स्त्री केवल शोषण का शिकार नहीं, बल्कि अपने अस्तित्व और आत्मसम्मान के लिए लड़ने वाली एक सशक्त इकाई के रूप में सामने आती है।

"ती स्वतःला सूर्याच्या आठवणींसह का कोंडून घेतेय?
तो बेटा म्हणे, तिच्या स्वप्नांत येतो अन् रक्तात"[8]

अनुज लुगुन के की कविताओं में प्रकृति केवल भौगोलिक परिदृश्य नहीं, बल्कि आदिवासी अस्मिता, संघर्ष और जीवन का अनिवार्य अंग है। वे जंगल, नदियाँ और पहाड़ों को आदिवासी संस्कृति का अभिन्न हिस्सा मानते हैं और बताते हैं कि बाहरी शोषणकारी शक्तियों द्वारा इनके विनाश से आदिवासी समाज की जड़ें हिल जाती हैं।

"कोई नहीं बोलता इनके हालात पर
कोई नहीं बोलता जंगलों के कटने पर"[9]

तो मराठी के भुजंग मेश्राम की कविताओं में प्रकृति केवल जीवित संसाधन नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक और दार्शनिक सत्ता का रूप धारण करती है। वे दिखाते हैं कि आदिवासी जीवन प्रकृति के साथ सामंजस्य में चलता है और यह सामंजस्य ही उनकी संस्कृति की आत्मा है।

"झाडांवरची पाखरं उडून गेलीत,
फांद्यावरच्या पानांची पान्झड हां हां म्हणत आभाळभर झाली... "[10]

'अघोषित उलगुलान' काव्य संग्रह में अनुज लुगुन ने आदिवासी मिथकों और ऐतिहासिक नायकों का व्यापक प्रयोग किया गया है। वे इन प्रतीकों के माध्यम से वर्तमान शोषण और संघर्ष को ऐतिहासिक संदर्भों से जोड़ते हैं। उनके यहाँ एकलव्य, बिरसा मुंडा और संथाल विद्रोह के प्रतीक आदिवासी चेतना को जागृत करने का कार्य करते हैं। वे लिखते हैं कि

"हाँ, एकलव्य! ऐसा ही हुनर था
जैसे तुम तीर चलाते रहे होगे"[11]

वही भुजंग मेश्राम के 'उलगुलान' काव्य संग्रह में मिथक केवल ऐतिहासिक न होकर दार्शनिक और आत्ममंथन से जुड़े प्रतीकों के रूप में उभरते हैं।

"लोक तुझी वाट पाहात आहेत
ज्या खडतर वाटेने तू निघून गेलास ती पायवाट
आजचा राजमार्ग झालाय तुझ्या आठवणींसारखाच..."[12]

यहाँ बिरसा मुंडा का मिथक केवल एक ऐतिहासिक क्रांतिकारी के रूप में नहीं उभरता, बल्कि वह आत्मसंघर्ष और सामूहिक स्मृति का प्रतीक बन जाता है। बिरसा की यात्रा एक आदिवासी की मुक्ति की आकांक्षा का रूप लेती है, जिसे आज भी जनसंघर्षों में दोहराया जाता है। इस संदर्भ में, बिरसा न केवल इतिहास में दर्ज एक व्यक्ति हैं, बल्कि वे आत्मचेतना और सामाजिक संघर्ष का जीवंत प्रतीक हैं।

शिल्प की दृष्टि से देखा जाए तो अनुज लुगुन की भाषा अत्यंत सरल, प्रवाहमयी और प्रभावी है। उनकी कविताओं में आदिवासी समाज की पीड़ा को सीधे शब्दों में प्रस्तुत किया गया है, जिससे पाठक तत्काल जुड़ाव महसूस करता है। वे छंद और मुक्तक दोनों का प्रयोग करते हैं, लेकिन उनकी कविताएँ मुख्यतः मुक्त छंद में अधिक प्रभावी लगती हैं। उनकी शैली में आक्रोश और विद्रोह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। जैसे-

"कोई नहीं बोलता इनके हालात पर
कोई नहीं बोलता जंगलों के कटने पर
पहाड़ों के टूटने पर
नदियों के सूखने पर
ट्रेन की पटरी पर पड़ी तुरिया की लावारिस लाश पर
कोई कुछ नहीं बोलता" [13]

तो दूसरी ओर भुजंग मेश्राम की भाषा अधिक दार्शनिक और गूढ़ है। वे गहरे बिंबों और प्रतीकों का प्रयोग करते हैं, जो आदिवासी संस्कृति और अस्तित्व के मूलभूत प्रश्नों को उजागर करते हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति एक जीवंत तत्व के रूप में उभरती है, जो मनुष्य और प्रकृति के संबंधों को परिभाषित करती है। वे छायावादी और प्रयोगवादी शिल्प में भी निपुण हैं। जैसे-

"त्यांना ठाऊक असते का विदिशेचे ऋतुचक्र?
त्यांना दिसते का टांगलेले कागदी जग भिंतीवर?" [14]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अनुज लुगुन और भुजंग मेश्राम दोनों कवियों की कृतियाँ आदिवासी जीवन और संघर्ष को अलग-अलग कोणों से प्रस्तुत करती हैं। अनुज लुगुन का 'अघोषित उलगुलान' प्रतिरोध और राजनीतिक चेतना को प्रमुखता देता है, जबकि भुजंग मेश्राम का 'उलगुलान'

सामाजिक और सांस्कृतिक पक्ष को अधिक बल देता है। कला पक्ष की दृष्टि से अनुज लुगुन की कविताएँ सरल और सीधे संवाद स्थापित करती हैं, जबकि भुजंग मेश्राम की कविताएँ गहराई और प्रतीकात्मकता से भरपूर हैं। दोनों काव्य संग्रह अपने-अपने ढंग से आदिवासी जीवन के विभिन्न पहलुओं को सामने लाते हैं और साहित्य में आदिवासी चेतना को मजबूती से स्थापित करते हैं।

संदर्भ

1. अघोषित उलगुलान- अनुज लुगुन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2023,पृष्ठ-17
2. उलगुलान-भुजंग मेश्राम, लोकवाङ्मय गृह, तृतीय संस्करण, 2023, पृष्ठ-44
3. अघोषित उलगुलान- अनुज लुगुन, पृष्ठ-17
4. उलगुलान-भुजंग मेश्राम, पृष्ठ-48
5. अघोषित उलगुलान- अनुज लुगुन, पृष्ठ-17
6. उलगुलान-भुजंग मेश्राम, पृष्ठ-26
7. अघोषित उलगुलान- अनुज लुगुन, पृष्ठ-96
8. उलगुलान-भुजंग मेश्राम, पृष्ठ-31
9. अघोषित उलगुलान- अनुज लुगुन, पृष्ठ-18
10. उलगुलान-भुजंग मेश्राम, पृष्ठ-22
11. अघोषित उलगुलान- अनुज लुगुन, पृष्ठ-23
12. उलगुलान-भुजंग मेश्राम, पृष्ठ-47
13. अघोषित उलगुलान- अनुज लुगुन, पृष्ठ-18
14. उलगुलान-भुजंग मेश्राम, पृष्ठ-23